REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 7 | APRIL - 2019

# हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा में हास परिहास का अनुशीलन

कुसुमलता प्रजापति[1], डॉ. आँचल श्रीवास्तव[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग डॉ.सी.वी. रमन यूनिवर्सिटी कोटा बिलासपुर (छ0ग0)
[2]शोध निर्देशक विभागाध्यक्ष डॉ.सी.वी. रमन यूनिवर्सिटी कोटा बिलासपुर (छ0ग0)

**प्रस्तावना :–**

साहित्य में गंभीर और सतही बातों को कहने की विशिष्ट शैली होती है जिससे गंभीर बाते बड़ी सहजता से अभिव्यक्त होती है और सतही बातें भी गंभीर लगती हैं। आवश्यकता और प्रसंगानुसार वह पाठकों के भावों को संवेदित करती हैं। पद्य में भाव संवेदन शक्ति के आधार पर ही तीन तरह की शब्द शक्तियाँ आई–अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। अभिधा से व्यंजना की ओर क्रमशः जाने पर भाव संवेदन की शक्ति बढ़ती जाती है अतः व्यंजना शब्द शक्ति उत्तम मानी जाती है। गद्य में इन्ही विशेषताओं के साथ व्यंग्य विधा का पदार्पण हुआ। व्यंग्य विधा में आवश्यक गंभीर, सामयिक मुद्दों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता होती है। व्यंग्य विधा में हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे सशक्त हस्ताक्षर हिन्दी साहित्य में हैं। गद्य में व्यंग्य विधा रोचक होती है और इसमें पाठकों को गुदगुदाने की क्षमता भी होती है। व्यंग्य विधा में अगर गंभीरता हटा दिया जाये तो वह हास परिहास में परिणत हो जाता है। गद्य में हास परिहास नीरस गद्य को सरस सहज बना देता है। वर्तमान में हास परिहास की प्रासंगिकता सर्वाधिक है। आधुनिक युग में जहाँ मनुष्य बाजारवाद व संचार तकनीकी की गिरफ्त में इस तरह जकड़ गया है कि पारिवारिक ढाँचे लगातार टूट रहे हैं, एकाकी मनुष्य कुण्ठित, अवसादग्रस्त कई तरह के मानसिक रोगों को आमंत्रण दे रहा है। उसकी निजता पर संचार की तकनीको के लगातार हमले हो रहे है, उसकी मौलिकता नष्ट हो रही है। ऐसे में एकाकी मनुष्य का सहारा किताबों में अंकित हास परिहास ही हैं और बच्चन की आत्मकथा में हास परिहास को पर्याप्त जगह मिली है। कविवर बच्चन ने जिस रोचक ढंग से अपने जीवन के पात्रों का चित्रण किया है उससे मन रंजित हो जाता है। क्लांत मन फिर से स्फूर्त हो जाता है।

बच्चन की आत्मकथा में हास परिहास को समझने के लिए हास परिहास को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. पात्रों के चरित्र चित्रण में हास–परिहास
2. प्रसंगानुकूल घटनाओं के वर्णन में हास–परिहास

बच्चन के जीवन में ऐसे बहुत से व्यक्ति आए जिनसे वे प्रभावित हुए उनमें से कुछेक के चरित्र का ऐसा रोचक वर्णन किया है कि पाठक को पढ़ते–पढ़ते ही सहसा हँसी आ जाती है। आत्मकथा के प्रथम भाग ''क्या भूलूँ, क्या याद करूँ'' में ही गंसी चाचा, मौलवी साहब, पण्डित विश्राम तिवारी, एल0डी0गुप्ता, डी0पी0वर्मा , डी0पी0शुक्ला, ऐसे ही पात्र हैं। गंसी चाचा जिनका पूरा नाम गणेश प्रसाद था, बहुत महत्वाकांक्षी थे। उस समय बलिया के प्रसिद्ध गणितज्ञ डॉ0 गणेश प्रसाद के बारे में एक जनश्रुति थी कि उन्होंने एक कठिन गणित का सवाल हल करते हुए बिना किसी एनस्थिसिया के ही पाँव के फोड़े का ऑपरेशन करा लिया था। गंसी चाचा एक नाम होने के कारण उनके गुणों को भी सम करने में लग गये। इस सनक में बी0ए0 में एक विषय के रूप में उन्होने गणित ले लिया और गणित में फेल होते रहे। उनके फेल होने पर घर में रोने पीटने का जिक्र भी बच्चन करते हैं। आगे बच्चन उनके संयम को सलाम करते हुए कहते है कि उन्होंने 'किंग ब्रूस एण्ड द स्पाईडर' की कहानी ऐसे ही नही पढ़ी थी। साल दर साल फेल होने के बाद भी परीक्षा में बैठने वाले गंसी चाचा आखिर एक साल पास हो ही गए उनके पास होने का स्वर–''गंसी पास हो गए, गंसी पास हो गए!!1'' घर मुहल्लों में गूँज उठा।.

गंसी चाचा के बाद बच्चन जी ने बड़े रोचक बौर मजेदार ढंग से मौलवी साहब का वर्णन किया है। मौलवी साहब नन्हे बच्चन और उनके अनुज शालिग्राम को उर्दू पढ़ाने आते थे। उनका डील डौल, पोशाक और उनकी सख्ती को स्मृत करते हुए कहते हैं– कि ''गंजी गोरी चाँद पर कुब्बेनुमा टोपी, जिससे उनका लम्बा कद कुछ और लम्बा जान पड़ता था, छोटी कटी मूँछों पर भरी हुई खिचड़ी दाढ़ी, आँखों की पुतलियाँ निलछर,

कोए जैसे बाहर निकलने को आतुर हों। गरारेदार पाजामे पर ढीला–ढाला छकलिया अंगा, पाँवों में सुलेम शादी जूती हाथ में डण्डा। जाड़े के दिनों में अंगे के नीचे रूईदार मिर्जई पहन लेते जिससे उनकी वैसे ही भारी काया कुछ और भारी भरकम हो जाती।''[2] मौलवी साहब के शारीरिक डील डौल उस पर उनकी पोशाक और हाथ में दण्ड तो वैसे ही बाल मन को भयातुर करने को पर्याप्त था। इसके साथ उनकी सख्ती की चर्चा भी मशहूर थी कि पढ़ने वाले बच्चे के माता पिता से वो पहले ही एक करार कर लेते कि 'चमड़ी हमारी हड्डी तुम्हारी'।

हास परिहास के इस वर्ग में एक और पात्र का जिक्र भी आवश्यक है, उसके बिना हास परिहास का क्रम अवरूद्ध हो जायेगा और वह पात्र है पण्डित विश्राम तिवारी। पण्डित विश्राम तिवारी उँचामण्डी मुंसिपल स्कूल में हेड मास्टर थे। ठेठ गाँव से आकर शहर में रहने वाले महत्वाकांक्षी व्यक्ति के रूप में पण्डित जी का वर्णन बच्चन करते हैं। गाँव और शहर के शानो–शौकत की खाई को गाँव का व्यक्ति किस शीघ्रता से पाटने की कोशिश करता है, अपने शारीरिक आवरण को पहले बदलता है ताकि भूल से भी गाँव की झलक उसके व्यक्तित्व में ना झलके। ऐसे व्यक्ति में गाँव के मिट्टी गाँव के खान–पान गाँव के रहन–सहन की निश्चलता शक्ति और सादगी सहज शोभनीय होती है पर शहर की चकाचौंध में सबसे पहले वह अपने रहन–सहन को बदलता है। उनके व्यक्तित्व में अध्यापकों की सख्ती भी कुछ सकारात्मक कुछ भयोत्पादक और कुछ हास्यप्रद थी। दण्ड देने में उनका मोटो था–'बिना कसूरम चार गोदाहम'। [3] दण्ड देने की इतनी तैयारी कि खुद चाकू से छील काटकर नीम के सोंटे तैयार करना दुर्लभ है। फिर प्राथमिक परीक्षण में ही बिना अपराध के एकाद सोंटे लगा देना और अपने मोटो को कायम रखना उनका विशेष स्वभाव था। दूसरे बच्चे को मार खाते देख कोई बच्चा अगर गिड़गिड़ाता तो उसका उत्तर भी तुलसीदास की चौपाईयाँ दहाड़कर देते थे–

जौ नहिं दण्ड करौ खल तोरा,
भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा।

इस तरह से उनके शब्दकोश में कृपा दया की तो कोई जगह नहीं थी इस भय से कई छात्र स्कूल छोड़ देते तो इस पर सगर्व वो एक और चौपाई दहाड़ते–

''जेकर होई बजर का टाना,
सो आवे विश्राम की शरणा।''

इस तरह के पण्डित विश्राम तिवारी के व्यक्तित्व में दण्ड का विधान था जिससे तथाकथित बहादुर छात्रों का उद्धार हुआ और कायरों का अवसान।

एल0डी0 गुप्ता, डी0पी0 शुक्ला, एन0सी0 मुखर्जी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अध्यापक थे। एल0डी0 गुप्ता के विषय में कुछ कहने से पूर्व ही बच्चन उनकी आत्मा से क्षमायाचना कर कहते हैं कि वे व्यक्तित्व–विहिन व्यक्ति थे। बच्चन के एक सहपाठी ने उनकी नीरसता में भी रस लेने के लिए एक लिमरिक बनाई–

"There was a peculiar man called L.D.
On his face there is no expression of 'jaldi'
He was a terrific breeder
When he wasn't made a reader,
He made a readers that made him awfully wealthy"[4].

जिसका हिन्दी अर्थ सम्भवत :–

एक विशिष्ट पुरूष हुए नाम था एल.डी.
जिनके चेहरे पर कभी कोई भाव न थे जल्दी
जब वो नहीं बनाते थे पाठक
तब वो बन जाते थे बेहतरीन पालक (पोसने वाला)

पाठक उन्होंने उसे बनाया जो भयंकर रूप से उन्हे धनवान बनाये।

एल0डी0 गुप्ता की तरह ही एकरस व्यक्ति थे डी0पी0 वर्मा। डी0पी0 वर्मा साहब की कद काठी और अध्यापन शैली की एकरसता से परिचित कराते बच्चन कहते हैं– ''वर्माजी लंबे, अपने बंद कॉलर के कोट–पैण्ट में ज्यामिती के लंब के समान दुबले–पतले, बोलने में न आरोह, न अवरोह चेहरे पर न प्रसन्नता न मलिनता– हमें खड़ी बोली हिन्दी पढ़ाते थे।'' बच्चन जी के सहपाठियों ने उनका नामकरण 'भिण्डी' के रूप में किया था। शुक्ला साहब वर्मा जी के ठीक प्रतिलोम थे। उनके कद–काठी आहार–विहार का चित्रण तो बच्चन जी ने और भी रोचक ढंग से किया है– उन्हें

कोट–पैण्ट में देखकर ऐसा लगता था कि ''कोट पैंट नुमा एक बड़ा सा थैला बनाकर उसमें उन्हें भर दिया गया है और उनका कुम्हड़े सा सिर भर बाहर निकल रहा है।''5 शुक्ला जी पान के शौकीन थे। जब वे हँसते थे तो अगल–बगल के दो दाँत उनके अधर से बाहर निकल आते थे। शुक्ला जी के काया सौंदर्य पर उनके एक सहपाठी ने उन्हें विष्णु के दशावतार में से बाराह रूप मानकर एक कवित्त लिखा था जो बच्चन सहित सारे सहपाठीयों को हँसाने के लिए पर्याप्त था। इलाहाबाद युनिवर्सिटी में एक और विलक्षण शाही व्यक्तित्व से भूषित पं. अमरनाथ झा का चित्रण भी पाठकों को यदा–कदा हँसने का अवसर देता है। झा साहब को भी शरारती विद्यार्थियों नें लिमरिक से मुक्त नहीं किया था। उन पर बने लिमरिक से तो निराश हुए बच्चन की हताशा जाती रही और वह खुद ही इस हास्य रस में डूबकर आनंदित होते रहे लिमरिक इस प्रकार है–

There was a man called A Jha
He had a very heavy Bheja
He was a great snob
When you asked him for a job
He dolesomely uttered 'achchha dekha jayega'[6].

बच्चन झा साहब से जब–जब निराश हुए इस लिमरिक के गुन गाकर अपनी निराशा को दूर किया। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों ने दो और प्राध्यापकों को अपने लिमरिक का शिकार बनाया जिसका उल्लेख बच्चन करते हैं। ये दो विशेष प्राध्यापक थे मिस्टर एस. सी. देब और मिस्टर भगवत दयाल। बच्चन जी के स्मृति में देब साहब की जो मूरत चिर हो गई थी। उस मूरत में ''भारी शरीर की तुलना में सिर और भारी तेल की चिकनाई से चमकते छोटे काले केश के मध्य सीधी मांग, चौड़ी–छोटी नाक के नीचे किसी लोशन या तेल की सहायता से उमेठी मूँछें–बिच्छू के दो डंकों जैसी।''7 उनकी मूरत के अलावा उनके पढ़ाने की शैली भी बड़ी विशिष्ट थी– ''खड़े होकर बोलते थे धारा प्रवाह, हर चौथे पाँचवे शब्द पर आघात बीच–बीच में फ्रेंच की हुरेट जिसे क्लास में शायद ही कोई समझता हो। देसी अंग्रेजी का ऐसा शब्द प्रपात गो बंगाली उच्चारण प्रभाव से सर्वथा मुक्त–नायग्रा फाल जैसा न पहले देखा न बाद को ही देखा।''[8] देब साहब पर लिमरिक लिखने की धृष्टता स्वयं बच्चन जी ने अपने शरारती विद्यार्थी जीवन में की थी –

प्रोफेसर देब वाज द सेम इन लेंग्थ एण्ड ब्रेड्थ
ऐण्ड ए मैन ऑफ एन साइक्लोपीडिक डेप्थ
ही वाज हम्बुल टु ए फाल्ट,
ऐण्ड हम्बलर विद द समर साल्ट
ही कूड टाक आफ हाफिज एण्ड होनोलूलू ऐण्ड हलवा इन वन ब्रेथ[9]

इसका एक हिन्दी रूपक भी था जो भारत भूषण अग्रवाल के मुक्तक में था–

प्रोफेसर देब थे गोल मटोल
मानो विश्व ज्ञान के ढोल
विनम्रता के थे अवतार
और विनम्रतम बन जाने में
उन्हें नहीं लगती थी बार
कर सकते थे वे हाफिंज का,
होनो लूलू, की हलवे का
एक साँस में शाखोच्चार।

लिमरिक के शिकार दूसरे अध्यापक मिस्टर भगवत दयाल जिन पर अंग्रेजियत इस कदर होवी था कि वे अपना नाम भी बी0 डायल बताते। उन पर अंग्रेजियत की सनक शायद एंग्लोइण्डियन स्कूलों और इंग्लैण्ड में पढ़ने के कारण हुई हो। बच्चन कहते हैं कि किसी भी हिन्दुस्तानी द्वारा अंग्रेज की नकल जिस हद तक की जा सकती थी उन्होंने की थी और इसका ज्वलंत उदाहरण था कि जब वो बोलते थे मुँह में सिगार या पाईप दबाकर। उनके कद काठी, उनके चरित्र को और पुष्ट करती है यह लिमरिक –

देयर वाज ए मेन काल्ड डायल
ही वाज प्राउड ऑफ हिज इंग्लिश स्टायल
एण्ड प्राउडर ऑफ हिज प्रोज
बट प्राउडेस्ट ऑफ हिज नोज
दैट मेंड हिम लुक ए गारगोयल। 10

बच्चन जी में चरित्र चित्रण को रोचक बनाने की अद्‌भुत कला थी। नीरसता और दुरूहता न तो उनके पद्य में है न ही गद्य में। इसका जीवंत उदाहरण गंसी चाचा से लेकर पं0 अमरनाथ झा के वर्णन में देख सकते है। इन गुणों के अभाव में चार भागों की उनकी वृहद आत्मकथा शायद बहुत नीरस और ऊबाउ हो जाती। बच्चन रचनावली के संकलनकर्ता श्री अजित कुमार ने एक जगह कहा कि ''मैं तो उन्हे आत्मकथा की 5 वें भाग लिखवाने का आकांक्षी था।'' सुधी पाठक भी 'दशद्वार से सोपान' तक के आगे जानने के प्रबल जिज्ञासु तो अवश्य हुए होंगे, यह जिज्ञासा ही उन्हें गद्य में शिखर तक पहुँचा देता है।

बच्चन के आत्मकथा के बगीचे में अभी हास परिहास के फूल और भी हैं पर ये घटना आधारित है। मौलवी साहब जिनका जिक्र पहले भी हो चुका है बच्चन को उर्दू पढ़ाने आते थे। नन्हे बच्चन और उनके अनुज शालिग्राम को एक बार मौलवी साहब पढ़ा रहे थे, इतने में शालिग्राम को कुछ शरारत सूझी मौलवी साहब ने डाँट दिया शालिग्राम ने फिर भी शरारत नहीं छोड़ी। मौलवी साहब को गुस्सा आ गया और वे मारने के लिए बढ़े शरारती शालिग्राम कुछ दूर हट गये। भारी भरकम शरीर लेकर मौलवी साहब के लिए उठना कठिन था। इस बात से वाकिफ शालिग्राम की शरारत और बढ़ती गई। मौलवी साहब अपना भारी शरीर अपनी विशिष्ट शिक्षण षैली के दंम पर नन्हे शालिग्राम से भिड़ गए। ''शालिग्राम भगे और मौलवी साहब ने उन्हे दौड़ाना शुरू किया पर शालिग्राम कहाँ हाथ आने वाले थे। आगे–आगे शालिग्राम पीछे–पीछे भद–भद भागते मौलवी साहब जैसे हिरन के पीछे हाथी।[11]'' अंततः मौलवी साहब हाँफते हुए लौट आए। इस अनोखे दृश्य को याद करते बच्चन अपनी हँसी नहीं रोक पाते थे उस दिन भी नहीं रोक पाये परिणामस्वरूप मौलवी साहब ने शालिग्राम के शरारत का दण्ड बच्चन को दे दिया। अपने बचपन का एक और प्रसंग याद कर पाठकों को बच्चन गुदगुदा जाते हैं। यह घटना उनके स्कूल जाने के पहले दिन की है। स्कूल का दृश्य है एक ओर बच्चन एक कक्षा में बैठे हैं उन्होंने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई। उनकी दृष्टि, संयुक्त प्रांत आगरा व अवध क नक्शे पर दूसरी ओर मेज पर रखे बेंत और तीन चार मुर्गा बने लड़कों पर अटक गई। संयुक्त प्रांत आगरा व अवध के नक्शे के वर्णन करते हुए वे कहते हैं – '' नक्शा मुझे झाँसी और मिर्जापुर जिलों की टांगो पर खड़ा एक कुत्ता सा लगा जिसका मुँह देहरादून था।''[12] नक्शे के वर्णन से पाठकों के मस्तिष्क इस नक्शे का बिम्ब अनायास उभर जाता है। और उस नक्शे को वास्तविक रूप में देखने की लालसा भी जगती है।

लड़के जो सजा के तौर पर मुर्गा बने थे, उस सजा–ए–मुर्गा को भी बच्चन जी ने रोचक बना दिया – ''खड़े हो, पाँव फैला कमर से आगे झुक, हाथों को पीछे से टाँगों के बीच ला, सिर नीचाकर कानों को पकड़ना पडता था।[13] था '' 13 बच्चन के बालमन में ये दृश्य कितनी दृढ़ता से अंकित थे कि उनका जीवंत रोचक चित्रण उन्होंने किया है। स्कूली दिनों को याद करते हुए बच्चन कहते हैं कि वैसे तो स्कूल सामान्यतया ढीलम–ढालम गति से चलता था पर डिप्टी साहब के दौरे से खासा तनाव में आ जाता था। निरीक्षण पहले से सूचित होती तो स्कूल की खास सफाई बच्चों द्वारा ही होती। स्कूल के सारे सामान व्यवस्थित किए जाते सब बच्चे साफ उज्ज्वल कपड़े पहनकर आते। मास्टर लोग तो जैसे बारात में जाने को आते थे। अगर डिप्टी साहब का दौरा एकाएकी हो जाता तो स्कूल थर–थर काँपने लगता था और राहत की साँस तभी लेता था जब डिप्टी साहब विदा होते थे। स्कूल या और भी सरकारी संस्थाओं का आलम आज भी कमोबेस वैसा ही है जैसा बच्चन जी के बचपन में था। इन हास्यास्पद घटनाओं का जिक्र पाठक के तनाव को कम करता है। आजीविका गृहस्थी के चक्कर में हर मनुष्य किसी न किसी सरकारी संस्था से सम्बद्ध होता ही है और इस तरह के तनाव से गुजरना हर सामान्य मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। इन प्रसंगों से उनमे निहित हँसी के फुहारों से एक सामान्य जन की अनुभूति को भी अभिव्यक्ति मिल जाती है। पाठकों के इसी समानुभूति को उद्‌भुत करना ही शायद बच्चन का उद्‌देश्य भी हो।

एक घटना पंडित अमरनाथ झा से संबंधित है। झा साहब का पूरा व्यक्तित्व उन पर बसाये हुए लिमरिक में ही उभर आता है। उनके शाही स्वभाव को स्मृत कर बच्चन बहुत डरते–डरते संकोच के साथ द्वितीय श्रेणी की अपनी एम.ए. की डिग्री लेकर झा साहब के पास गए, कि शायद झा साहब यूनिवर्सिटी में कोई जगह देने में सहायक हों। गोया की उन्होनें उनके एक सहपाठी को जिसने द्वितीय श्रेणी पाया था, यूनिवर्सिटी में जगह दी थी। झा साहब की चुप्पी और गंभीरता की गुरूता से किसी की भी हिम्मत न हो पाती थी कि उनके सामने बैठकर कुछ पूछ सकें। चुप्पी को तोड़ते हुए झा साहब ने ही बच्चन को आगे की योजना के विषय में पूछा। उनके शुरूआत करने पर उन्हें बच्चन जी ने अपना अध्यापन करने का इरादा बताया और रूक गये कि बात शायद झा साहब सकारात्मक रूप से पूरी करेंगे। पर शाही स्वभाव के भार से दबे झा साहब ने कुछ नहीं बोला और बच्चन घबराकर अपनी रूकी बात को आगे बढाये कि अब तो उन्हें यूनिवर्सिटी में जगह मिलनी मुश्किल है वे किसी स्कूल या इंटर कॉलेज में ही जगह पा सकते हैं : इस पर झा साहब के कथन से वे उदास हो गए थे। उदासीनता के इस हेतु को भी उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से व्यक्त किया है ताकि पाठक सरस हों – ''परमानेंसी के लिए ट्रेनिंग, एल.टी. या बी.टी. कर लेना जरूरी है उनके इस वाक्य के साथ मुझे ऐसा लगा जैसे यूनिवर्सिटी का दरवाजा मेरे सामने सदा के लिए फटाक से बंद हो गया। मैंने दरवाजे के पीछे से कुछ आवाज ही सुन सकने की आशा से उनसे पूछा, क्या इसी साल ट्रेनिंग कर लूँ ? इस पर उन्होंने अपना मन भर का सिर डेढ़ बार आगे को झुकाया और मैंने औपचारिक प्रणाम कर उनसे विदा ली।[14]''

बच्चन की इस उक्ति में झा साहब के गुरू मस्तिष्क को मन–भर भारी बनाकर उनकी गुरूता का मान पाठकों को सहज ही कर दिया है। 1930 में जब बच्चन जी एम.ए. पूर्व के विद्यार्थी के रूप में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पुनः प्रविष्ट हुए तो अपने एक विशिष्ट सहपाठी गजाधर प्रसाद सिन्हा के एक मानसिक रोग का उल्लेख बड़े रोचक और हास्यपूर्ण ढंग से करते हैं।उनकी बीमारी थी एम.ए. में प्रथम श्रेणी लाने की। प्रथम श्रेणी के फेर में उन्हें आभास होता था कि उनकी तैयारी प्रथम श्रेणी के अनुरूप नहीं हुई हैं और वे परीक्षा छोड़कर ड्राप कर जाते थे। यह आधी तैयारी का

आभास और ड्रामा का क्रम अनवरत रूप से सोलह साल तक चला। बच्चन आगे कहते हैं– ''उनकी परीक्षा भीरूता संक्रामक थी और हर वर्ष अपने साथ एक–दो को ले बैठती थी।[15]''

आत्मकथा के अंतिम भाग 'दशद्वार' से सोपान' तक में बच्चन अपनी आपबीती बताते–बताते स्वयं अपने वय का अर्द्धशतक पूरा कर चुके थे। इस उम्र के बाद व्यक्ति का स्वाभाविक झुकाव आध्यात्म की ओर हो जाता है। बच्चन का भी हुआ। इस झुकाव के कारण उनकी भेट काष्ठमौनी महाराज से हुआ जिनसे मिलकर वे अभिभूत हुए। उनके मौन प्रेरणा से ही उन्होंने हिन्दी जगत को भगवदगीता का जनगीता में रूपांतरित कर उसे जन–मन के लिए सुलभ कर दिया। आध्यात्म की ओर जाते–जाते उनके मन में श्री अरविंद घोष के आध्यात्म से जुड़ने की ललक पैदा हुई। इस ललक को पंत जी ने और दृढ़ कर दिया। पंतजी स्वयं अरविंद दर्शन और आध्यात्म में इतना डूब गये थे कि उनकी कविता ही उस चक्कर में डूब गई थी। बच्चन उनके ''सावित्री'' नामक काव्य संग्रह के कवित्व से प्रभावित भी हुए पर उनके दर्शन और आध्यात्म की दुरूहता ने उनको कहीं स्पर्श नहीं किया। अरविंद ने अतिमानव और अतिमानस जैसी संकल्पना का प्रणयन मानव कल्याण के लिए किया। मद्रास से लौटते समय बच्चन पाण्डिचेरी में उनके आश्रम को देखने गए । उस समय तक महर्षि ब्रह्मलीन हो चुके थे उनकी समाधि वर्णन रोचक ढंग से करते हैं। ''वृक्षों की छाया में संगमरमरी पत्थरों का बना चबूतरा, जिसका हर दिन सुबह भक्तों द्वारा नये–नये प्रकार से फूल श्रृंगार किया जाता है। वृक्ष पर कौए तो आकर बैठेंगे। उन्हें क्या पता कि नीचे किस महापुरूष की शयन–शैया लगी है। वे उस पर बीट करने में क्यों संकोच करेंगे। कौओं को ऐसा नहीं करने देना चाहिए।[16]'' उपाय में दिन भर के लिए चार भक्तों को वहाँ गुलेल देकर तैनात किया गया और वे तीन–तीन घण्टे हाथ में गुलेल ताने ऊर्ध्व–दृष्टि समाधि की परिक्रमा करें और अगर कौएं ऊपर की किसी डाल पर बैठे दिखायी दे तो उनको निशाना बनायें।'' मैने समाधि को नमन किया गुलेल बाजों को भी – ''राम ते अधिक राम का दासा।'' महापुरूष कभी मृत नही होते पर उनके पार्थिव शरीर के स्थान के लिए ये चौकस बंदी, ऐसी कर्मठता हास्यास्पद है। दिनकर जी ने अपने ''संस्कृति के चार अध्याय'' में कहा है कि महात्मा गांधी से पूर्व अहिंसा को मानसिक स्तर पर महर्षि अरविंद ने ही उतारा था पर कर्म क्षेत्र में तो महात्मा गांधी ही उसे सबसे पहले ला पाये। ऐसे महापुरूष के कर्म को ताक में रखकर सिर्फ उनकी समाधि को सजाने का आडंबर और सफाई का ध्यान भी विशिष्ट है।

महर्षि अरविंद की समाधि दर्शन के बाद एक और धर्म गुरू से मिलने रोचक प्रसंग का बच्चन उल्लेख करते हैं। बच्चन रजनीश के साहित्य में अभिव्यक्ति का पैनापन, विचारों की मौलिकता और क्रांतिकारी की निर्भीकता से प्रभावित थे। वे उनसे मिलने को व्यग्र और उनसे साक्षात्कर के बाद काफी प्रसन्न भी हुए। बच्चन को लगा कि रजनीश उनके मधुकाव्य में गहरा गोता लगा चुके हैं। दोनो परस्पर एक दूसरे के दिल के आईने में अपनी–अपनी मूरत देख रहे थे। पहली बार मिलने के बाद वे कई बार मिले। विचारों का भावों का आदान–प्रदान हुआ। दोनों के बीच पत्राचार भी हुए दोनों के संबंध मधुर थे। बच्चन रजनीश के विचार और प्रेम से अभिभूत उनसे मिलने एक बार उनके रिहायशी घर वुडलैण्ड में गए, उनके मिलने का उत्साह और प्रेम को रजनीश की प्राईवेट सेक्रेटरी योगलक्ष्मी ने उनके सामने दृढ़ता पूर्वक रोक कर, घड़ों पानी डाल दिया। योगलक्ष्मी के मुख से भगवान शब्द सुनकर स्तब्ध रह गये। योगलक्ष्मी से ज्ञात हुआ कि भगवान रजनीश से मिलने के, उनका प्रवचन सुनने के बहुत नियम विनियम हैं। बच्चन उन नियमों के अनुसार ही प्रविष्ट हुए और उन्होंने पाया वहाँ भी प्रायः दृशित हर दल, पंथ पार्टी समाज की तरह सारी दुनिया को ही अपने में शामिल करने की वासना है। वह भी उनके संपर्क में आने वाले को अपने चित्र की माला गले में डालकर संन्यास लेने को ही अपना सान्निध्य के योग्य पा रहे हैं। रजनीश के शिष्यों ने जब उन्हें संन्यास लेने को बार–बार कहा तो कबीर का अकाट्य उत्तर उन्होंने दिया की – ''मन ना रँगाये –रँगाये जोगी कपड़ा।'' इस प्रकार थक कर एक रजनीशी संन्यासी ने उनसे पत्र व्यवहार कर भगवान श्री रजनीश के संदेश को फैलाने की प्रत्याशा की तो बच्चन ने बहुत सटीक और हास्यपरक जवाब देकर उस संन्यासी की यह इच्छा भी पूरी कर दी – ''मैं तो भगवान श्री के संदेश का प्रचार उस समय से कर रहा हूं, जब वे चंदन के पालने में लेटे अपने पाँव का अंगूठा चूस रहे थे।[17]'' इस प्रकार आचार्य रजनीश के विचार और साहित्य को बच्चन अपने जीवन में उतारते रहे किंतु उनके संप्रदाय से सर्वथा मुक्त होकर जैसा कि उनका स्वभाव ही था, उन्होंने अपना मन रंगा, कपड़ा नहीं।

बच्चन जी के जीवन में उत्साह और अवसाद में से अवसाद की अधिकता रही। कई ऐसे नाजुक क्षण भी आए कि जिससे जीवन को समाप्त करने की इच्छा भी जगी किन्तु उद्दाम संघर्ष के आग्रही बच्चन ने कभी उस ओर प्रवृत्त अपने को प्रवृत्त नहीं होने दिया। उनके जीवन में एक कवि की वेदना है, साधारण मनुष्य की विवशता है, शासकीय सेवक पर लादा हुआ अकूत कार्यभार है। परिवार का मोह अर्थात एक सामान्य मनुष्य की स्वाभाविकता, सहजता के लोक गुण के साथ एक कवि का विशिष्ट गुण भी है।

जीवन की जटिलताओं में जकड़े अति सजग और महत्वाकांक्षी मनुष्य के बंधन को ये हास्य चरित्र चित्रण और प्रसंग निश्चय ही कुछ ढीला करने में समर्थ हैं।

## संदर्भः–

1. बच्चन हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 23
2. बच्चन हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 121
3. बच्चन हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 132

4. बच्चन हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 178
5. वही
6. बच्चन हरिवंशराय, नीड़ का निर्माण फिर, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 74
7. बच्चन हरिवंशराय, बसेरे से दूर, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 19
8. बच्चन हरिवंशराय, बसेरे से दूर, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 20
9. वही
10. वही
11. बच्चन हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 122
12. बच्चन हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 125
13. वही
14. बच्चन हरिवंशराय, नीड़ का निर्माण फिर, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 85
15. बच्चन हरिवंशराय, नीड़ का निर्माण फिर, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 74
16. बच्चन हरिवंशराय, दशद्वार से सोपान तक, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 251
17. बच्चन हरिवंशराय, दशद्वार से सोपान तक, (2013) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली पृ0 क्र0 – 443
18. दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय (2010) लोक प्रकाशन, तीसरा संस्करण।